संन्यास तो जीवन की पूर्णता है

संन्यास के आदर्श **भगवद्पूज्यपाद शंकराचार्य** माने जाते हैं। सुदूर **केरल** प्रांत के **कालाड़ी ग्राम** में आज से **2500 वर्ष** पूर्व उनका जन्म हुआ। **ब्राह्मण** कुल में जन्म लेने के साथ अपने विद्वान पिता से **ज्ञान** एवं **संस्कार** प्राप्त किया। अल्प आयु में ही पिता का देहान्त हो गया लेकिन अपनी **शिक्षा** उन्होंने अधूरी नहीं छोड़ी। ग्यारह वर्ष की आयु में माता के निधन और अपने चारों ओर फैले पाखंड के कारण उनका मन अत्यंत विचलित हो गया और उन्होंने संन्यास लेने का निश्चय कर घर से रवाना हो गए। उन्होंने जीवन्त संन्यास ग्रहण किया। वे किसी एक स्थान पर रूके नहीं। पूरे **भारतवर्ष** में भ्रमण करते रहे। हजारों **ज्ञानियों तपस्वियों** से मिले। अंततः **उज्जैन** के निकट **ओंकारेश्वर** में उन्हें अपने गुरू **गोविन्दपादाचार्य** के दर्शन हुए। उनसे **दीक्षा** प्राप्त की, ज्ञान प्राप्त किया और आगे भारत भ्रमण के लिये निकल पड़े।

जीवन में उन्होंने कोई **गुफा, कंदरा** में जाकर, छिप कर बैठ कर साधना ध्यान चिन्तन नहीं किया, अपितु **आर्यावर्त** में घूमकर **वैदिक संस्कृति** को पुनः स्थापित किया। अपने गुरू की आज्ञा से पूरे भारतवर्ष में ज्ञान का प्रकाश फैलाया। हिंदू धर्म के सभी वर्गों के लोगों को एक करने के लिए उन्होंने भारत के चार कोनों में **चार शक्तिपीठ** दक्षिण में **रामेश्वरम्,** पूर्व में **जगन्नाथ पुरी,** पश्चिम में **द्वारका, उत्तर में केदारनाथ** शक्तिपीठ स्थापित किये और स्वयं अपने गुरू की स्मृति में **पंचम शक्तिपीठ कांचीकामकोटि** स्थापित किया। जीवन में केवल एक ही धुन थी कि मैं किस प्रकार **वेदों उपनिषदों** के **ज्ञान** को **हिन्दू संस्कृति** में पुनः स्थापित करूं। ब्राह्मण तथा पुरोहितों ने जो कर्मकाण्ड का जंजाल फैला रखा है उससे वास्तविक धर्म का सत्यानाश हो गया है तथा धर्म पर लोगों की आस्था उठ गई है। **सद्गुरूदेव** ने भी अपने एक प्रवचन में कहा कि **''जब किसी राष्ट्र में धर्म के प्रति आस्था समाप्त हो जाती है तो वह राष्ट्र एक नहीं रह पाता, उसमें सद्भाव समाप्त हो जाता है और जब आपसी सद्भाव समाप्त हो जाता है तो राष्ट्र की उन्नति रूक जाती है और यही उस समय हो रहा था। तब शंकराचार्य ने पूरे भारत वर्ष को एक सूत्र में पिरोया तथा धर्म की पुनः स्थापना की।''**

इस प्रसंग का तात्पर्य है कि संन्यासी कभी भी शांत हो कर, छुप कर बैठ नहीं सकता। वह एक स्थान पर अधिक समय तक

रूकता नहीं है। उसके जीवन का उद्देश्य **जन चेतना** जाग्रत करना होता है। **सच्चा संन्यासी, संन्यास और सांसारिक जीवन को अलग-अलग भागों में नहीं देखता।**

पुराणों में एक सुन्दर प्रसंग आया है कि भगवद् पूज्यपाद वेदव्यास के पुत्र **शुकदेवजी** ने अपने पिता से संन्यास लेने की आज्ञा मांगी तो श्री वेदव्यासजी ने कहा कि गृहस्थ में रहकर भी संन्यासी की तरह जीया जा सकता है। **शुकदेव मुनि** ने तर्क दिया कि संन्यास और गृहस्थ बिल्कुल अलग-अलग पक्ष हैं और गृहस्थ व्यक्ति अपनी ही चिंताओं में खोया रहता है इस कारण यह संभव नहीं है कि **गृहस्थ जीवन** में रहकर संन्यासी की तरह जीवन जीया जा सकें। इस पर वेदव्यास ने कहा कि **राजा जनक** महान् मनीषी हैं। उनके पास जाकर कुछ दिन रहो और ज्ञान प्राप्त करो उनसे जब ज्ञान प्राप्त हो जायेगा। तब तुम **संन्यास** लेने के लिये **स्वतंत्र** हो।

शुकदेव जी राजा जनक के यहां पहुंचे और अपना परिचय दिया तो **राजा जनक** ने उन्हें दरबार में बुला लिया। वहां देखा तो बड़ा ही अद्भूत दृश्य पाया, राजा जनक सुन्दरियों के बीच आमोद-प्रमोद कर रहे थे उनकी कई रानियां, दासियां थी। राजसी वस्त्र पहने संगीत, नृत्य का आनंद ले रहें थे। शुकदेवजी को लगा कि यह कैसे मनीषी हैं? आखिर उनसे रहा नहीं गया और उन्होंने राजा जनक से पूछ ही लिया **'आप कैसे मनीषी हैं?**, आप उपदेश कुछ और देते हैं और आपके जीवन में यह व्यवहार कुछ अलग सा है। यह सब कुछ अजीब लग रहा है। **आप को विदेह राज कहा जाता है विदेह राज का अर्थ है जो अपनी देह से परे हो। संसार में लिप्त न हो।** शुकदेव मुनि ने कहा कि आपको सारे ऋषि-मुनि किस लिये प्रणाम करते हैं और ज्ञानियो में आपको सर्वश्रेष्ठ मानते हैं तथा आपको सच्चा संन्यासी भी मानते हैं। मैं यह बात समझ नहीं पा रहा हूँ संभवत: सारे साधु, संन्यासी आपके दरबार में आते हैं आपका गुणगान करते होंगे अन्यथा मुझे तो यहां सन्यास जैसा कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा हैं। राजा जनक ने कहा कि आप थक गये हैं पहले भोजन कर लें, विश्राम कर लें। उसके बाद संन्यास इत्यादि की चर्चा करेंगे।

दूसरे दिन राजा जनक ने पूछा कि भोजन और विश्राम में कोई कमी तो नहीं थी। मुझे विश्वास है कि आपने भोजन और विश्राम का आनन्द लिया होगा। **इस पर शुकदेव मुनि अत्यंत क्रोधित हो उठे और बोले कि भोजन तो बहुत अच्छा था लेकिन आपने सिर के ऊपर एक तलवार बांध रखी थी वह भी एक पतले से धागे के साथ, इस कारण पूरा ध्यान तो तलवार की तरफ ही रहता और इस कारण भोजन स्वादिष्ट कैसे लग सकता था तथा विश्राम के समय भी सिर के ऊपर तलवार**

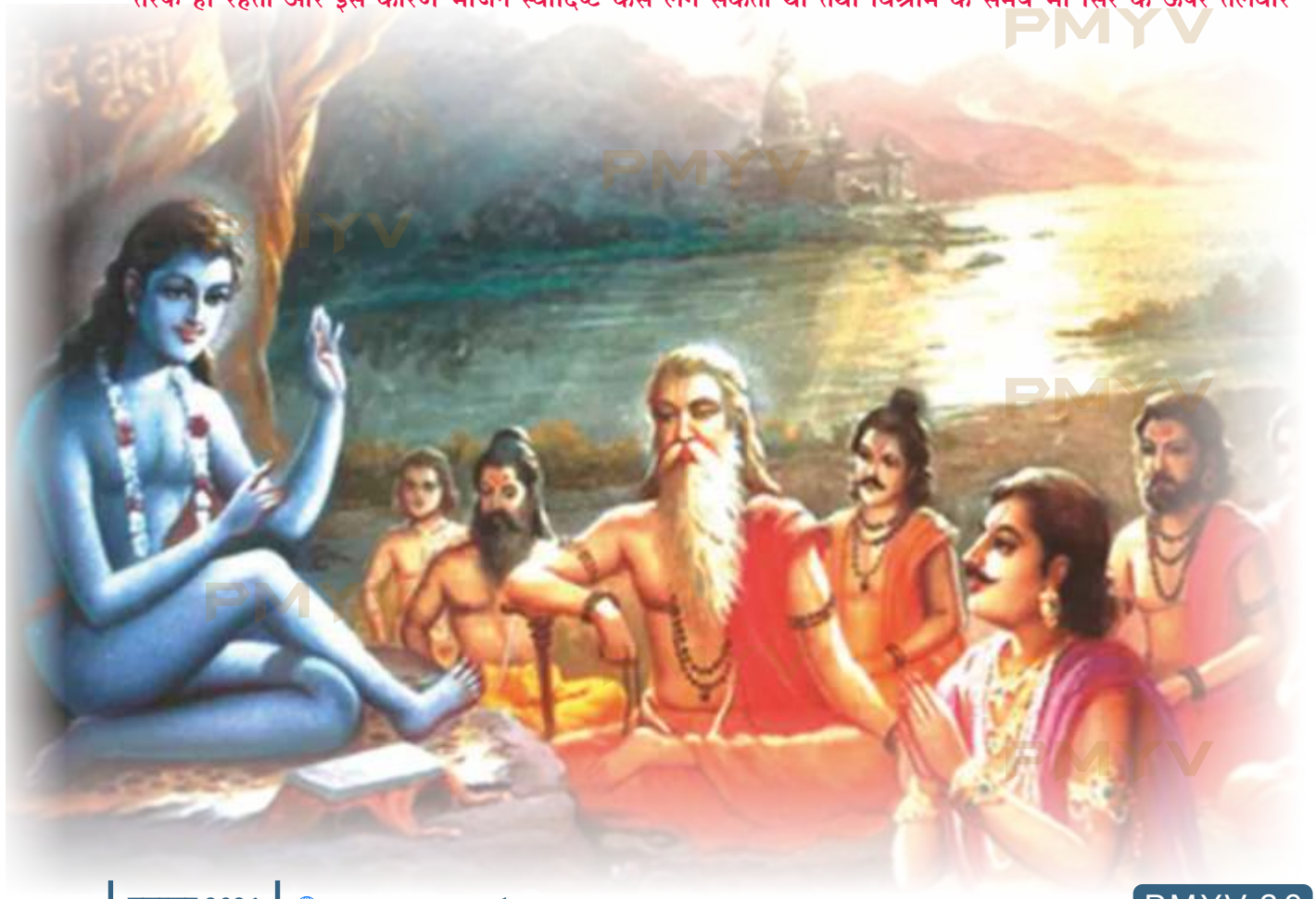

लटका रखी थी। इस कारण एक क्षण भी नींद नहीं ले पाया पूरा ध्यान तलवार की ओर केन्द्रित था।

राजा जनक मुस्करा दिये और बोलें कि कल जो आपने प्रश्न पूछा था उसका यही उत्तर है। मैं जीवन में सारे आमोद-प्रमोद करता हूँ लेकिन सदैव इस बात का ध्यान रखता हूँ कि मेरे ऊपर यमराज की तलवार लटकी हुई है। इसलिये मैं पूर्ण निष्ठा के साथ राज-काज चलाता हूं। राज्य में **धर्म** की स्थापना में सहयोग देता हूँ, ना मालूम किस घड़ी यमराज की तलवार प्राण ले लें। अतः मैं किसी भी प्रकार की तृष्णा में लिप्त नहीं होता हूँ, संसार के सारे राग-रंग देखते हुये भी मन को इन सबसे अलग रहने देता हूं। मन को **वासना, तृष्णा, भोग** इत्यादि में लिप्त नहीं होने देता हूं।

यह सुन कर शुकदेव मुनि को ज्ञान आया और उन्होंने कहा कि आप मुझे संन्यास धर्म का ज्ञान दीजिये। तब राजा जनक ने कहा **संन्यास जीवन का ही एक भाग है, गृहस्थ जीवन में रहकर व्यक्ति संन्यस्त हो सकता है** क्योंकि **जीवन का लक्ष्य** ही **आत्मा** को **प्रसन्न** करना है। राजा जनक **बृहदारण्यक- उपनिषद** में **याज्ञवल्क्य ऋषि** द्वारा अपनी पत्नी से शास्त्रार्थ करते हुए एक श्लोक कहा और शुकदेव मुनि को बताया कि यह श्लोक ही जीवन का सार है।

मैत्रेयी ने पूछा कि जीवन में अमर होने का जो रहस्य है वह आप समझा दीजिये। जीवन में उसी से पूर्ण अवस्था प्राप्त की जा सकती है इस पर याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा कि-

सहोवाचनवा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रिया भवत्यान्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति।

नवाअरे जायायै.....आत्मा व अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो

मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयी यात्मनो व आरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदूँ सर्वविदितम्॥

वह आत्मा ही तो द्रष्टद्रव्य है, श्रोतव्य है, मंतव्य है, निदिव्यासितव्य है उसी को देख, उसी को सुन, उसी को जान, उसी का ध्यान कर। मैत्रेयी! आत्मा के ही देखने से, समझने से और जानने से सब गांठे खुल जाती है।

वास्तव में मनुष्य जीवन में प्रतिदिन हजारों बंधन जाने अनजाने बढ़ते रहते हैं और मनुष्य उन बंधनों के रूप में **मोह, कामना वासना** में इतना अधिक लिप्त हो जाता है कि उससे परे हट कर वह जीवन देख ही नहीं सकता। **मोह** और **तृष्णा** ईश्वर की

दी हुई एक ऐसी क्रिया है जिससे मनुष्य इस संसार को चलाता रहता है। लेकिन मनुष्य इसमें इतना अधिक लिप्त हो गया है कि वह केवल **शत्रुता, तृष्णा, वासना** के बारे में ही सोचता है और अपना जीवन एक **कूप-मण्डूक** की तरह व्यतीत कर देता है। जब इन बातों से मनुष्य ऊपर उठता है तब **कर्मशील** बनता है। जब तक कर्म कर्तव्य से जुड़ा रहता है। तब तक वह कर्म **सात्विक** होता है और जीवन संन्यास कहलाता है। लेकिन जब असात्विक से जुड़ जाता है तब मनुष्य स्वतंत्र नहीं हो पाता और वह दूसरों के अधीन होता है। **जीवन का उद्देश्य ही स्वतंत्रता प्राप्त करना होता है।** अपनी इच्छा से जीवन का प्रत्येक क्षण जी सके इसी को संन्यास कहा गया है।

संन्यास भी एक प्रकार से कर्म का ही स्वरूप है। **व्यक्ति के पिछले जन्मों के कर्म व्यक्ति की आत्मा के वासना संसार में जुडे रहते हैं और इस जन्म में भी समय-समय पर व्यक्ति विशेष के साथ जुड़े होने वाले व्यवहार का आधार ही कर्म भी बनते हैं।** अब इसमें इस जन्म के कर्म जोड़ भी सकते हैं और इस जन्म के जो कर्म हैं उन्हें जुड़ने से रोक भी सकते है।

जो भी कर्म **वासना** रूप में स्मृति में रह जाते हैं वही तो बंधन है। चाहे वो प्रेम का बंधन हो, घृणा का बंधन हो, शत्रुता का बंधन हो अथवा मित्रता का बंधन हो, संतान के प्रति प्रेम का बंधन हो अथवा अन्य व्यक्तियों के साथ अलग-अलग प्रकार के संबंध हो क्योंकि कर्म तो एक क्षण की क्रिया है। एक बार जो बोल दिया जो कर दिया वह कर्म बन जाता है। इस प्रकार कर्म तो समाप्त हो गया लेकिन उसका बंधन अपना भाव छोड़ जाता है और वह स्थायी रूप से चित्त में प्रतिष्ठित हो जाता है। आगे की क्रियायें जो करते हैं वह इसी कर्म की वासना के बंधन से करते हैं। आज से पंद्रह वर्ष पहले किसी से **शत्रुता** हो गई अथवा **घृणा** हो गई उसे निभाते ही चले जाते हैं, तब जीवन में स्वतंत्रता कैसे आ सकती है।

स्वामी वेदानंद जी जो कि **सिद्धाश्रम संस्पर्शित योगीराज** हैं उन्हीं के शब्दों में मैंने बराबर इस संन्यासी को पानी में खड़े हुए देखा है, कल इसकी साधना का अन्तिम दिन था, इसने अपनी साधना जिस संकल्प-शक्ति के बल पर संपन्न की है, वह विरले लोगों को ही नसीब होता है। कनखल के गंगा तट पर हजारों लोगों की भीड़ में सैकड़ों संन्यासियों को भी देख रहा हूं... मैं देख रहा हूं, कि संन्यासी ने अपनी अंतिम मंत्र-जप संपन्न किया और दोनों हाथ ऊपर उठाकर अपने गुरू को मन ही मन अर्घ्य दिया... कुछ युवा संन्यासी पानी में उतरे हैं और आस-पास के स्तम्भों से बंधे रस्सी को हटाकर इस तेजस्वी संन्यासी को पानी से बाहर लाने के उपक्रम कर रहे हैं, चौबीस दिन एक स्थान पर खड़े होने से पावों का खून जम-सा गया है, संन्यासी चलते हुए लड़खड़ा रहे थे, उन्हें सहारा देकर बाहर लाया गया, उफ! उनके पांव छलनी हो गये हैं, नसें फूल गई हैं... पावों को जगह-जगह से मछलियों ने काट खाया है, कुछ स्थानों पर एक-एक इंच गहरे गड्ढे भी दिखाई पड़ रहे हैं, मगर इतना सब कुछ होने के बावजूद भी उनके चेहरे पर किसी भी प्रकार की पीड़ा या विषाद के चिन्ह नहीं हैं वास्तव में ही यह संन्यासी लौह पुरूष है, सारा आकाश उस संन्यासी की जय-जयकार से गुंजरित हो रहा है, कुछ युवा संन्यासी ने गर्म तेल से उसके पैरों की मालिश प्रारम्भ कर दी है, शायद ये युवा संन्यासी दृढ़ व्यक्तित्व के शिष्य हैं, जिस अप्रतिम संकल्प-शक्ति के सहारे इस योगी ने यह साधना सिद्ध की है, वह **अद्वितीय** है! मेरा मन और शरीर स्वत: ही उनको चरणों में झुक गया है और वही संन्यासी सिद्धाश्रम के **प्राणाधार, संचालक, योगेश्वर परमहंस स्वामी निखिलेश्वरानंद जी** हमारे **पूज्य सद्गुरूदेव जी** जिनको पूरा भारतवर्ष **डा. नारायण दत्त श्रीमाली** के नाम से पुकारता है

गीता के बुद्धि योग में भी यही कहा गया है कि कर्म से फल की इच्छा का अर्थ यही है कि स्वयं को फलस्वरूप परिणाम से न जोड़ा जाए। **कर्म को केवल कर्म के रूप में किया जाये, क्योंकि इसमें संदेह नहीं है कि कर्म करे और उसका फल प्राप्त**

नहीं हो। लेकिन जब हम फल के बारे में ही विचार करते रहते हैं तो सही रूप से कर्म नहीं कर पाते। उसका सही रूप से फल भी नहीं मिल पाता। संन्यास धर्म का विशेष विवेचन **भगवान श्रीकृष्ण** ने गीता में स्पष्ट रूप में किया है। उन्होंने कर्म को संन्यास से जोड़ा और कहा कि **कर्म, अकर्म, विकर्म** इन तीनों स्थितियों में से कर्म को छांटना पड़ता है। भगवान ने कहा है कि कर्म को समझना चाहिए, विकर्म को समझना चाहिए और अकर्म को समझना चाहिए। उन सब में से कर्मांश को निकालकर उपयोग में लाना चाहिए। इसलिए **भगवान श्रीकृष्ण** ने कहा है कि-

कर्मण्यकर्म चः पश्येचेदकर्मणि च कर्म यः।
सबुद्धिमान् मनुष्येषु नरः पापैर्विमुच्यते॥

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि कर्म जो अकर्म देखे तथा अकर्म में जो कर्म देखे वह **बुद्धिमान** है। अकर्म **ब्रह्म** का नाम है तथा कर्म माया का नाम है। ज्ञान के आधार पर माया कर्म चलती है। यह दृष्टि ही कर्म बंधन से छुड़ाने वाली होती है। यह श्लोक ही **कर्मण्येवाधिकारास्ते** का स्पष्टीकरण है जो कि **ईशावास्य** के मंत्र के आधार पर भगवान ने यहां स्पष्ट किया है। मंत्र है-

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविमुपासते।
ततोपि ते अधं तम य उविधायां रताः॥

इस श्लोक का सीधा अर्थ है कि दोनो ही स्थितियों में व्यक्ति के जीवन में मुक्ति का भाव नहीं आ सकता। एक स्थिति में वह कर्म बंधन में दिन-रात लगा हुआ है और दूसरी स्थिति में वह **ब्रह्म भाव** में दिन-रात लगा हुआ है। एक घर परिवार, समाज में जकड़ा हुआ है तो दूसरा केवल साधना तपस्या में ही उलझा हुआ है। जब कि जीवन का वास्तविक उद्देश्य दोनो ही स्थितियो में **स्वतंत्रता** प्राप्त करना है। जब तक **मानसिक स्वतंत्रता** प्राप्त नहीं हो जाती तब तक व्यक्ति का जीवन **पशु** की तरह ही बीतता है चाहे वह कैसे भी वस्त्र पहन लें, कैसा भी खान-पान कर ले। अंतस बुद्धि से ही और आंतरिक स्वतंत्रता से ही एक विशेष दृष्टि प्राप्त होती है जिसे **अंतर्चक्षु जागरण क्रिया** कहा गया है। यह चक्षु जाग्रत हो जाते हैं तो व्यक्ति स्वतंत्र हो जाता है।

जब जीवन प्राप्त हुआ है तो जीवन में कई प्रकार के संयोग वियोग बनते हैं। हर संयोग किसी कार्य का निमित्त बनता है। लेकिन ऐसा कौन सा कार्य है जो व्यक्ति स्वतंत्र रूप से कर सकता है? जब व्यक्ति सम भाव से जीवन जीना प्रारम्भ कर देता है,

स्वध्याय और स्वयं से वार्तालाप प्रारम्भ कर देता है तथा समदृष्टि भाव आ जाता है तो व्यक्ति स्वतंत्र हो जाता है और वही संन्यासी बन सकता है। अपने भीतर आत्म अवलोकन करने का हमारा दर्शन है वह अपने पिछले संस्कारो को जानने और उन्हें परिष्कृत करने का मार्ग है। जीवन चक्र से मुक्त होने के लिए जीवन से भागना नहीं है। कर्तव्य भाव से ही जीवन में मुक्ति प्राप्त हो सकती है और वहीं पूर्ण संन्यास का भाव है।

इसीलिये हजारों वर्ष पूर्व **महर्षि पराशर** ने **संन्यास, संन्यासी** और **जीवन** के दस नियम बताये। ये व्यवहार में लाने योग्य नियम है और जो व्यक्ति इन नियमों का पालन करता है वह संन्यासी बनकर जीवन में आंनद प्राप्त कर सकता है। वह छोटे गांव में रहे अथवा बड़े शहर में वह नौकरी पेशा हो अथवा व्यवसायी, वह स्त्री अथवा पुरूष इसमें कोई अंतर नहीं पड़ता। इसीलिये महर्षि पाराशर कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति संन्यासी बन सकता है उसे जीवन से भागने की आवश्यकता नहीं है। उनके द्वारा दिये गये दस सूत्र हैं–

प्रथम सिद्धांत

सार्व भौमिक सत्य

तीन प्रकार के **सत्य** कहे गये हैं, वे हैं **तात्विक, व्यवहारिक** और **कौटुम्बिक सत्य** और ये सत्य **त्रिकाल बाधित जीवन** के सिद्धान्त होने चाहिये। **अर्थात् सत्य सदैव सत्य ही रहता है, वह किसी भी काल में किसी भी रूप में परिवर्तित नहीं हो सकता।**

गीता में जो **भगवान श्रीकृष्ण** ने उपदेश देते हुए कहा है कि सत्य को विजय प्राप्त होने में थोड़ा विलम्ब अवश्य हो सकता है लेकिन सत्य कभी परास्त नहीं हो सकता। जिसने अपने जीवन में निश्चित सत्य को अपना लिया वह संन्यास मार्ग गृहस्थ जीवन जीते हुए भी पूर्णता की ओर अग्रसर हो सकता है।

द्वितीय सिद्धांत

ज्ञान कर्म और धन का प्रवाह

पाराशर ऋषि ने सिद्धांत दिया कि **सत्यनिष्ठ मनुष्य** के शरीर में **ज्ञान, कर्म** और **धन** का प्रवाह रहना चाहिये और वह प्रवाह सत्यनिष्ट व्यक्ति के जीवन में स्पष्ट रूप से दिखाई देना चाहिए। धन का प्रवाह रूकने से समाज का निधन होता है। उसी प्रकार ज्ञान के हाथ में, कर्म के हाथ में ज्ञान नहीं होने से समाज पंगु बन जाता है। अर्थात प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ज्ञान, कर्म और धन की स्थिति निरंतर बनी रहनी चाहिए तभी वह श्रेष्ठ कर्म संन्यासी बनकर स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकता है।

तृतीय सिद्धांत

ज्ञान कर्म और धन की दिशा

ज्ञान, कर्म और समाज मनुष्य के जीवन में एक ही दिशा में प्रवाहित होने चाहिए, ऐसा नहीं की धन कुछ व्यक्तियों के पास एकत्र हो जाये और कुछ व्यक्ति केवल कर्मशील ही हो। इसलिए ज्ञानी व्यक्तियों को समाज में ही रहकर, संन्यास भाव में रहकर धन और कर्म के बीच में समन्वय स्थापित रखना चाहिये। ज्ञान भी धन है और संन्यासी का मूल उद्देश्य ही ज्ञान रूपी धन द्वारा समाज को चैतन्य करना है।

चतुर्थ सिद्धांत

फल की प्राप्ति

मनुष्य जो भी कर्म करे उसका फल उसे अपने जीवन में अवश्य ही प्राप्त होना चाहिए। निरउद्देश्य भाव में साधना, कर्म इत्यादि क्रियाएं सम्पन्न करने से पूर्णत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती है। हर स्थिति में व्यक्ति को लक्ष्य अपने सामने अवश्य रखना चाहिये। वही सच्चा तत्वदर्शी, कर्म संन्यासी बन सकता है।

पंचम सिद्धांत

नम्रता और शौर्य

कर्मशील संन्यासी के जीवन में **नम्रता** और **शौर्य** दोनों ही भाव अवश्य होने चाहिये। संसार में सब को अच्छा कहने से संसार नहीं चल सकता है, इसी तरह संसार में जैसे चल रहा है, वैसा ही चलने देने की भावना भी कर्म संन्यासी के मन में नहीं आनी चाहिये। **असत्य** का **नम्रता से प्रतिकार** और **सत्य** का **दृढ़ता से पालन** कर ही **अन्याय** और **अत्याचारों** से रहित अनुशासित समाज की रचना की जा सकती है और **ऐसे समाज की रचना करना कर्म संन्यासी का कर्तव्य है।**

षष्टम सिद्धांत

प्रभावशाली नेतृत्व

हर व्यक्ति अपने घर में अपने स्थान पर नेतृत्व करने की क्षमता रखता है, आवश्यकता इस बात की है कि अपने भीतर उस क्षमता का विकास किया जाये। **नेतृत्व सदैव प्रभावशाली और सत्य से युक्त होना चाहिये जिससे समाज को नई दिशा सदैव प्राप्त होती रहे, सड़े-गले** समाज में परिवर्तन लाने के लिए जो प्रभावशाली नेतृत्व दे सकता है **वही संन्यासी है।**

सप्तम सिद्धांत

स्त्री शक्ति का जागरण

जिस समाज में **स्त्रियों** का **शोषण** होता हो, उन्हें उचित मान सम्मान प्राप्त नहीं होता हो ऐसा **समाज** उन्नति नहीं कर सकता। ऐसे समाज में व्यक्ति समाज की आधी शक्ति को **व्यर्थ, नष्ट** कर रहा होता है। **स्त्री शक्ति** जो की सृष्टि को चलाने के लिए आवश्यक तत्व मानी गई है उसका ही अपमान होगा तो संसार में **तेजस्विता** नहीं आ सकती और ना ही तेजस्वी ज्ञानी संतान पैदा हो सकती है। **इसलिये हर स्थिति में स्त्री शक्ति को जागृत करना संन्यासी का परम कर्तव्य है।**

अष्टम सिद्धांत

श्री, सरस्वती और शक्ति

संन्यासी का कर्तव्य है कि वह **समाज** को **स्वस्थ, सुखी** और **समृद्ध** बनाने के लिए **श्री, सरस्वती** और **शक्ति** की सम्मिलित उपासना करे। जब इन शक्तियों का दुरूपयोग होता है तो समाज में अव्यवस्था बढ़ती है। इन तीनों के समन्वय से ही **सुदृढ़ समाज** की रचना हो सकती है।

नवम सिद्धांत

संगठन

पाराशर ऋषि ने अपने सिद्धांतो में कहीं भी **वर्ण व्यवस्था** का उल्लेख नहीं किया है। **ब्राह्मण** वही जो **ज्ञानी** हो। **क्षत्रिय** वही जो **कर्मशील** हो और **वैश्य** वही जो **उत्पादक** हो **ये तीनों ब्रह्मतेज, क्षात्र धर्म और उत्पादन धर्म के प्रतीक हैं।** इन तीनों के समन्वय से ज्ञान, कर्म और उत्पादन का समन्वय होता है और इसी से ही **श्रमनिष्ठ, शोषणविहीन, अहिंसक समाज** की रचना संभव है। प्रत्येक साधक को संन्यासी कहना इसीलिये उचित है क्योंकि वह इन तीनों क्रियाओं **ज्ञान, धन** और **कर्म** के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है। इसके विपरित कोई भी अन्य क्रिया संन्यासी के लिए उचित नहीं है। आत्मा को सुख अवश्य प्राप्त होना चाहिए, लेकिन उसके लिए समाज में श्रेष्ठ आनन्दयुक्त वातावरण की रचना करना भी संन्यासी का ही कर्तव्य है।

दशम सिद्धांत

आत्मीयता

दशम सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत है **जिस में संन्यासी के लिए यह कर्तव्य निश्चित किया गया है कि समाज में आत्मीयता का वातावरण बनना चाहिए। जिस समाज में किसी प्रकार का ध्यान नहीं होता हो, किसी प्रकार की निश्चित धारणा नहीं हो और साधना, तपस्या जैसे कर्म नहीं हो तो वह समाज सुखी समाज नहीं बन सकता है।**

संन्यासी ही समाज में रहकर व्यक्ति रूप में रहकर समाज में उपरोक्त दसों सिद्धांतो का निर्वहन कर सकता है। **संन्यासी ही साधक होता है और साधक ही संन्यासी होता है क्योंकि साधना का तात्पर्य ही जीवन में निश्चित सिद्धांत अपनाकर निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सदैव कर्मशील रहना है।**

सबसे विशेष तथ्य यह है कि संन्यासी का सम्बन्ध **भगवती श्री विद्या** से है और **श्री विद्या** के ही नाम **ललिता, राजराजेश्वरी, महात्रिपुर सुन्दरी, षोडशी** इत्यादि है। **ऋग्वेद** के **वृहचोपनिषद** में इस पर सुलेख है कि एक मात्र **देवी** ही सृष्टि से पूर्व की थी और **राजराजेश्वरी** से ही सभी देवता प्रादुर्भूत हुए।

श्री विद्या की उपासना से आत्मज्ञान ही नहीं, **भोग** और **मोक्ष** भी सुलभ हैं-

श्री सुन्दरी सेवन तत्पराणां
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ।

श्री विद्या चारों पुरूषार्थ- **धर्म, अर्थ, काम** और **मोक्ष** दात्री है।

श्री राजराजेश्वरी के आयुध हैं- **पाश, अंकुश, इक्षुधनु** और **पुचपुष्प बाण**। अर्थात पाश इच्छा का प्रतीक, अंकुश ज्ञान का प्रतीक, बाण धनुष क्रिया शक्ति का प्रतीक है। श्री राजराजेश्वरी परम चैतन्य परब्रह्म परमात्मा से अभिन्न हैं। इसी को परम विद्या महाविद्या कहा गया है- **''या देवी सर्वभूतेषु विद्या रूपेण संस्थिता''** यही सर्व देवमयी विद्या है। इसी को **''विद्यायासि सा भगवती परमा हि देवी''** कहते हैं। विश्व में समस्त विद्याएं इन्हीं के भेद हैं। **''विद्या समस्तास्तव देविभेदाः।''** मंत्रों में **श्री विद्या** को श्रेष्ठ माना गया है-

''श्री विद्यैव हि मंत्राणाम्।''

राजराजेश्वरी श्री विद्या

वाग्देहरूप ओंकार का दोहन करती है- जो **शांत** और **शान्ततीता** है। मंत्र व मंत्रधीना होकर **सर्व यंत्रेश्वरी** व **सर्व तन्त्रेशरी** है, यहीं **राजराजेश्वरी श्री विद्या** है।

कार्तिक संन्यास पर्व है!

जब **कार्तिक मास** होता है और चन्द्रमा गगन मण्डल में अपनी पूरी आभा के साथ प्रकाशित होता है, वह दिवस दो कारणों से महान दिवस है। प्रथम तो यह राजराजेश्वरी श्री विद्या दिवस है जिस दिन राजराजेश्वरी की साधना सम्पन्न करने से जीवन में पूर्णता प्राप्त होती है। दूसरे इस दिवस को **भगवत् पूज्यपाद गुरूदेव** ने संन्यास जीवन को प्रारम्भ किया था और सब साधकों के लिये यह ज्ञान का दिवस है क्योंकि संन्यास जीवन के द्वारा ही सदगुरूदेव सम्पूर्ण जगत को ज्ञान का प्रकाश दे सके।

साधक हो अथवा शिष्य संन्यास दिवस के दिन उसे **राजराजेश्वरी साधना** अवश्य ही सम्पन्न करनी चाहिए और यह ध्यान रखना चाहिए की जीवन में **कर्म, ज्ञान, क्रिया, भोग** के साथ **उपासना, साधना, विद्या, ज्ञान** भी आवश्यक है और जब इनका समन्वय होता है तब व्यक्ति जीवन में सच्चा संन्यासी बनता है। यही सद्गुरूदेव द्वारा स्थापित कैलाश सिद्धाश्रम साधक परिवार का लक्ष्य है, **राजराजेश्वरी संन्यास दीक्षा** प्राप्त करना तो जीवन का सौभाग्य है जिसमें भगवती श्री- विद्या त्रिपुरा सुन्दरी राजराजेश्वरी की पूर्ण कृपा एवं वरदान प्राप्त होता है और जीवन बंधनों से अर्थात समस्याओं से मुक्त क्रिया प्रारम्भ कर देता हैं।

परम् पूज्य सद्गुरूदेव
कैलाश श्रीमाली जी